वैदिक प्रशासनिक व्यवस्था

वैदिक शासन-व्यवस्था के तीन प्रकार दिखाई पड़ते हैं-धर्मतांत्रिक, लोकतान्त्रिक या प्रजातान्त्रिक तथा राजतान्त्रिक। किसी राजनैतिक संस्था के विकास से पूर्व समाज प्रकृति-नियम द्वारा शासित था जिसको हम स्वशासन या धर्मतांत्रिक शासन कह सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति ऋत के नियम का पालन करता था। यह एक आदर्श शासन-व्यवस्था थी जिसमें किसी तंत्रात्मक संस्था के बिना ही सभी ऋतधर्म के नियमों के द्वारा शासित थे। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त अराजक, अराजता, अपरुद्ध आदि शब्द राजाविहीन समाज की ओर संकेत करते हैं। धर्मतन्त्रात्मक शासन का उल्लेख महाभारत में मिलता है जिसमें कहा गया है कि उस समय न तो कोई राज्य था और न ही कोई राजा; न कोई दण्ड्य था और न ही कोई दण्ड देने वाला; सभी प्रजायें अपना धर्म मानकर परस्पर एक दूसरे की रक्षा करती थीं।[9] परन्तु जब लोगों के मन में क्रोध, अहंकार, लोभ, स्वार्थ घृणा और दूसरी कई आसुरी वृत्तियों का वास हो गया तो धर्म के इस आदर्श शासन को धक्का लगा। परिणामस्वरूप बलवान् ने कमजोर को भयभीत करना शुरु किया। अब एक ऐसे शक्तिशाली और विवेकी व्यक्ति की आवश्यकता थी जो कमजोर को केवल सहायता या संरक्षण ही प्रदान न कर सके प्रत्युत शोषक बलशाली को दण्ड भी दे और धर्म के शासन को भी सुनिश्चित कर सके। ऐतरेय-ब्राह्मण में इस बात का उल्लेख है कि राजा की अनुपस्थिति में देवता असुरों से हार गये। जब उन्होंने सोम को अपना राजा बनाया तब सभी दिशाओं पर विजय पाई। शतपथ ब्राह्मण में भी एक ऐसी स्थिति का वर्णन है- जब जल के अभाव में सब ओर सूखा पड़ा और मत्स्य-न्याय की स्थिति आ गई। वास्तव में भारत के सांस्कृतिक इतिहास में इस मत्स्यन्याय की स्थिति नहीं

---

१. न राज्यं न च राजाऽऽसीन्न दण्ड्यो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।। -महाभारत, शान्ति. ५९.१९

Scanned with CamScanner

आई, फिर भी राजा की आवश्यकता पर बल देने के लिये इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। कौटिल्य ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि मत्स्यन्याय की स्थिति से दुःखी होकर लोगों ने अपनी सुरक्षा के लिये मनु को अपना राजा नियुक्त किया।

वैदिक साहित्य में प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली का उल्लेख मिलता है। शासन का प्रमुख राजा कहलाता था किन्तु राजसिंहासन उसे वंशानुगत अधिकार से नहीं मिलता था। प्रजा द्वारा उसका चुनाव होता था। संहिताओं में कई ऐसे सन्दर्भ मिलते हैं जिनमें राजा के चुनाव का उल्लेख है। ऋ.वे. १०.१७३.१-२ का एक ऋषि कहता है- "हे राजन् हमने आपका राष्ट्राध्यक्ष के रूप में वरण किया है इसलिये आप हमारे बीच रहिये; आप शक्तिशाली बनिये; आपको सभी प्रजा पसन्द करे; आपके हाथों से राष्ट्र अलग न होवे।" इसी प्रकार अथर्ववेद का भी ऋषि कहता है- "हे राजन् इस प्रजा ने तुम्हें राजा नियुक्त किया है; पाँच देवियों ने तुम्हें चुना है; राष्ट्र के सर्वोच्च पद को आप अलंकृत कीजिये और वहीं से अपनी प्रजा में धन का वितरण कीजिये (अ.वे. ३:४.२)। यह उल्लेखनीय है कि वेदकालीन प्रजातान्त्रिक शासन लोगों के हितों और राष्ट्र की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखता था। यदि राजा पद के अनुरूप अपने को शक्तिशाली या योग्य सिद्ध नहीं कर पाता तो उसे राजपद से हटा कर प्रजा किसी दूसरे व्यक्ति को राजा चुन लेती थी। कभी-कभी उसी राजा को जिसे पद से हटा दिया गया हो फिर से राजपद पर प्रतिष्ठित किया जाता था यदि वह किसी प्रकार जनता के विश्वास को प्राप्त कर ले और यह आश्वासन दे कि वह प्रजा को एक कुशल प्रशासन प्रदान करेगा। अ. वे. ३.३ में एक ऐसे राजा का वर्णन है जो अपने खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त करता है। राजा के एक बार चुने जाने पर उसके उस पद पर प्रतिष्ठित रहने के लिये अनेक याज्ञिक कृत्य सम्पन्न किये जाते थे।

वैदिक साहित्य में ऐसे भी अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जो उस समय की प्रचलित राजतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली की पुष्टि करते हैं। उस समय कई राज्य थे जो अलग-अलग राजाओं से शासित थे। क्षेत्रफल की दृष्टि से राज्य छोटे थे, किन्तु संहिताओं में पाये जाने वाले सम्राज्, एकराज, अधिराज, राजाधिराज शब्द राज्य के विस्तृत होने का संकेत देते हैं। एक राजा अपने को अन्य राजाओं से श्रेष्ठ दर्शाने के लिये बड़ी-बड़ी उपाधियां धारण करता था। अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ इस बात की ओर संकेत करते हैं कि महत्त्वाकांक्षी राजा पड़ोसी राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये सदा सक्रिय रहते थे।

Scanned with CamScanner

जब राजतन्त्रात्मक प्रणाली ने काम करना शुरु किया उस समय राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजा तथा राज्य की शत्रुओं से रक्षा करना था। राजा प्रजा का संरक्षक था इसलिये उसकी रक्षा करना उसका उत्तरदायित्व था। प्रजा की रक्षा की तरह 'ऋत' की रक्षा करना भी उसका प्रमुख काम था। इसीलिये उसे 'ऋतस्य गोपाः' कहा जाता था। ऋत के संरक्षक के रूप में वह वरुण था। राज्याभिषेक के समय उसे यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र एवं रुद्र के रूप में सम्बोधित किया जाता था। यम के रुप में वह अपराधियों को दण्ड देने वाला, कुबेर के रूप में प्रजा में धन बांटने वाला, वरुण के रूप में नैतिक मूल्यों का संरक्षक, इन्द्र के रूप में शत्रुओं को जीतने वाला तथा रुद्र के रुप में पापियों का संहारक था। स्पष्ट है कि वेदकालीन राजा में देवताओं के ये गुण पाये जाते थे इसीलिये वह ईश्वर का रूप माना जाता था। इसे 'धर्मपति' की भी उपाधि प्राप्त थी। धर्मपति होने के कारण वह अदण्ड्य था। उसे कोई मनुष्य दण्ड नहीं दे सकता था। यह बात उल्लेखनीय है कि यहाँ धर्मपति शब्द का अर्थ 'धर्म का स्वामी' नहीं अपितु 'धर्म का पालक' था। इसलिये धर्म के नियम से वह ऊपर नहीं था; धर्म के नियम बनाने का भी उसे अधिकार नहीं था। यदि वह स्वयं धर्म का उल्लंघन करता था इसके लिये वह दण्डित होता था। राज्याभिषेक के समय एक कृत्य सम्पन्न होता था। उस समय अध्वर्यु और उसकी प्रजा जब उस पर पवित्र जल से अभिषेक करती हुई 'अदण्ड्योऽसि' कहती थी उसी समय एक ब्राह्मण 'धर्मदण्ड्योऽसि' कहता था। यह प्रथा उस वैदिककाल में राजतन्त्र के ऊपर धर्मतन्त्र के नियन्त्रण की द्योतक है।

वैदिक काल में राष्ट्र कई प्रशासनिक इकाइयों में बंटा हुआ था। ये प्रशासनिक इकाइयां थीं- ग्राम, जन, विश एवं राष्ट्र। विभिन्न गृहों के समुदाय को, जो सुरक्षा की दृष्टि से एक दूसरे के पास-पास बनाये गये होते थे, ग्राम कहा जाता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी और उसका प्रमुख 'ग्रामणी' कहलाता था। 'ग्रामणी' शब्द इस बात की ओर संकेत करता है कि वैदिक प्रजातान्त्रिक प्रणाली के अन्तर्गत वह ग्राम का नेता होता था और राज्य सरकार की सभाओं में उस ग्राम का प्रतिनिधित्व करता था। उसका कर्तव्य ग्रामीणों के दैनिक कार्यक्रम की देखभाल करना था। उसे राजा की ओर से उन्हें सुरक्षा प्रदान करनी पड़ती थी। वह एक समृद्ध व्यक्ति होता था। ऋ.वे. (१०. ६२.११) में मनु को एक 'ग्रामणी' कहा गया है और उनके लिये 'सहस्रदा' 'हजारों का दान करने वाला' यह अभिधान प्रयुक्त हुआ है। ऋ.वे. १०.१०७.५ में ग्रामणी के उदात्त चरित्र का वर्णन है। इसे कहा गया है कि वह पुरोहितों को दक्षिणा देने में ग्राम के सभी

Scanned with CamScanner

राज्य की दूसरी बड़ी प्रशासनिक इकाई 'जनपद' थी। इसमें एक विशेष समुदाय के लोग होते थे। ऋ.वे. में 'जन' शब्द का अर्थ मनुष्य के अतिरिक्त 'जनसमूह' भी है। वैदिक साहित्य में अनेक जनों का उल्लेख मिलता है। जन का प्रधान "जनराज" कहलाता था (ऋ.वे. १.५३.६)। 'जनस्य गोपा' शब्द भी जनों के राजा का वाचक था (ऋ.वे. ३.४३.५)।

राज्य की सबसे बड़ी इकाई राष्ट्र था जिसका शासक राजा होता था। एक राष्ट्र में कई जनपद होते थे। अनेक जनपदों से मिलकर राष्ट्र बनता था। राष्ट्र के सभी लोगों को 'विश्' कहा जाता था। ऋ.वे. में 'आर्यविश्' (१०.११.४) और 'दासी विश्' (३.३४.६) का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः एक ही राष्ट्र में रहने वाले आर्य और दास जनों की ओर संकेत है। राजा को 'विश्-पति' या 'विशां पति' कहा जाता था। ऐसे बहुत से सन्दर्भ मिलते हैं जिनमें राजा और विशों के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख है। राजा का चुनाव विश् करते थे और वह तब तक शासन करता था जब तक वे चाहते थे। राजा हमेशा विशों के समर्थन को जीतने का प्रयत्न करता था। दोनों के परस्पर सम्बन्ध को मधुर बनाने के लिये अनेक याज्ञिक कृत्य किये जाते थे। तै.सं. १.६.१०.६ में यह कहा गया है कि सामन् के द्वारा किये गये यज्ञ का फल राष्ट्र को मिलता है और ऋक् के द्वारा किये गये यज्ञ का फल विश् को। तै.सं. ३.५.७.५ में राष्ट्र को एक पर्ण तथा विश् को अश्वत्थ वृक्ष कहा गया है। जब जुहू पात्र पर्ण का तथा उपभृत् अश्वत्थ का बना हो तो इसका अभिप्राय है कि राजा विश् के ऊपर है। पूर्ववैदिककाल में विशों का राजा के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण होता था। राजा भी राज्य की धरोहर तथा अपने को धरोहर का रक्षक समझता था। राज्याभिषेक के समय इन शब्दों के साथ राजा को राजधानी सौंपी जाती थी- 'हे राजन् यह राज्य आपका है, आप इसके नियन्त्रक हैं। इसकी सुरक्षा तथा वृद्धि के लिये इसे आपको सौंपा जाता है।'

पूर्ववैदिककाल में राज्यकार्य-निष्पादन में राजा की सहायता करने के लिये विशों की दो संस्थायें थीं-सभा और समिति। इन दोनों का राजा के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण भी होता था। अ.वे. ७.१२.१ में इनको प्रजापति की जुड़वां पुत्रियां कहा गया है। सभा शब्द के दो अर्थ हैं लोगों का समूह और वह गृह जहां लोग इकट्ठे होते हैं। यह सभागृह जुआ खेलने तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये होता था। सभा के लोगों को सभासद कहा जाता था और इसके अध्यक्ष को सभापति। सभा का सदस्य बनना गौरव की बात

Scanned with CamScanner

समझी जाती थी। लोग यही कामना करते थे कि उसका पुत्र 'सभेय' हो (ऋ.वे. १.६१. २०; पा.सं. २२.२२)। ऋ.वे. २.२४.१३ में सभा का सदस्य बनने के लिये स्तुतियों के साथ ब्रह्मणस्पति देवता को आहुतियां प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। मै.सं. २.२.१ में ग्राम के न्यायाधीश (ग्रामवादिन्) के न्यायालय को सभा कहा गया है। वा.सं. ३०.६ में सभाचार का उल्लेख है जो सभा का सदस्य होता था।

समिति से सम्बन्धित अनेक सन्दर्भ भी वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं। यह एक सामान्य सभा थी जिसमें सभी वर्गों के प्रतिनिधि होते थे। समिति की बैठकों की अध्यक्षता राजा स्वयं करता था। इस समिति को संसद नाम से भी जाना जाता था और इसके सदस्यों को भी संसद कहा जाता था। समिति की बैठकों में राज्य के अधिकारी विभिन्न स्थानों के लोगों के सामने राजा द्वारा प्राप्त धन की घोषणा करते थे (ऋ.वे. ८.४५.२५)। सभी मामलों में सबकी सहमति वांछित थी।

वैदिक भारत के राजनैतिक इतिहास में राजा के साथ-साथ पुरोहित का महत्त्वपूर्ण स्थान था। राजा और पुरोहित जो क्रमशः क्षत्र और ब्रह्मबल का प्रतिनिधित्व करते थे, वैदिक प्रशासनरूपी रथ के दो पहिये थे। पुरोहित ब्राह्मण होता था किन्तु वह केवल धार्मिक कार्यों के सम्पादन में ही राजा की सहायता नहीं करता था, अपितु राजा के सम्पूर्ण राजनीतिक मामलों के समाधान में वह साथ देता था। यहाँ तक कि युद्धकाल में भी वह राजा के साथ युद्धभूमि में जाता था और वहाँ अपने राजा की विजय के लिये देवताओं से प्रार्थना करता था। ऋ.वे. ४.५०.७-६ में ब्राह्मण पुरोहित की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि वही राजा अपने राज्य में सुप्रतिष्ठित होता है जिसके शासन में ब्राह्मण पुरोहित का सम्मान होता है। अ.वे. में ब्राह्मण पुरोहित की महिमा का विशेष रूप से वर्णन किया गया है (५.१७-१६)। गौ.ध.सू ११.१४.१५ के अनुसार राजा को सभी धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के लिये एक अच्छे कुल के विद्वान्, वक्ता, सुन्दर, उचित आयु के, गुणी, उच्च चरित्र वाले तथा अच्छी आदत वाले ब्राह्मण को अपना पुरोहित नियुक्त करना चाहिये। आप.ध.सू. २.५.१०, १४ के अनुसार पुरोहित को धर्मशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में पूर्ण पारंगत होना चाहिये। श्रौतसूत्रों में पुरोहित पद के अभ्यर्थी के लिये बृहस्पति सव नामक यज्ञ का विधान है।

वैदिक ग्रन्थों में प्रशासनिक व्यवस्था के घटक कई अधिकारियों का उल्लेख मिलता है। राजसूय याग में रत्न-हवींषि नामक आहुतियों के प्रसंग में राजदरबार के ११ अधिकारियों का उल्लेख मिलता है जिन्हें 'रत्निन्' कहा जाता था (श.ब्रा. ५.३.१

Scanned with CamScanner

१-१३)। ये रत्निन् थे-महिषी, पुरोहित, सेनानी, सूत, क्षत्तृ, संग्रहीतृ, भागदुघ, अक्षावाप, रथकार, ग्रामणी, तथा पालागल। राज्य के स्थायित्व के लिये राजा के साथ इनका सांमनस्य आवश्यक था क्योंकि इनमें से किसी के रुष्ट होने से राज्य को खतरा हो सकता था। राज्य के अधिकारियों की गतिविधियों तथा विशों की स्थिति के विषय में राजा को हमेशा जानकारी देते रहने के लिये गुप्तचर विभाग भी सक्रिय था। गुप्तचर के लिये 'स्पश्' शब्द का प्रयोग मिलता है। राजा के सन्देशवाहक भी होते थे जिनको दूत कहा जाता था। दूत ही विभिन्न राज्यों के साथ संचार के साधन थे। पूर्ववैदिक साहित्य उस समय की प्रचलित न्याय-प्रणाली तथा कानून के विषय में हमें बहुत अधिक जानकारी नहीं देता, किन्तु धर्मसूत्रों में इसका पूरा विवेचन किया गया है।

Scanned with CamScanner